

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

4/5 (श्लोक 45-59), रविवार, 16 अक्टूबर 2022

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/lpK5P4YvXHY>

स्वधर्म का पालन ही कर्मयोगी का आधार

प्रारंभिक पारंपरिक प्रार्थना और दीप प्रज्वलन एवं गुरु चरण वंदना के साथ अट्टारहवें अध्याय का विवेचन सत्र प्रारंभ हुआ। सम्पूर्ण भगवद्गीता का सार भगवान ने अट्टारहवें अध्याय में अर्जुन को बताया है। सत्त्व, रज और तमो गुणों के आधार पर मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आगे भगवान इन चार प्रकार के मनुष्यों के संबंध में कहते हैं।

18.45

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः(स), संसिद्धिं(म) लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः(स) सिद्धिं(म), यथा विन्दति तच्छृणु ॥18.45॥

अपने-अपने कर्म में प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होता है? उस प्रकार को (तू मुझसे) सुन।

विवेचन: आगे श्रीभगवान् इन चार प्रकार के मनुष्यों के संबंध में कहते हैं कि अपने अपने कर्म के बारे में ही सोचें। अपना - अपना कार्य पूरा मन लगाकर करना है। सभी को अपने - अपने धर्म का पालन करना है। भगवद्गीता स्वधर्म सिखाती है। भगवद्गीता का प्रथम शब्द ही धर्म है -

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥1॥

भगवद्गीता का अंतिम श्लोक का अंतिम शब्द -

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥18.78॥

अंतिम शब्द में कहते हैं कि मेरा कर्म क्या है यह जानना। कोई भी व्यक्ति जीवन में सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। अपने - अपने कर्मों में रत रहकर मनुष्य किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर लेता है? यह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो।

**यतः(फ) प्रवृत्तिर्भूतानां(म), येन सर्वमिदं(न) ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, सिद्धिं(म) विन्दति मानवः॥18.46॥**

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है (और) जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि शास्त्रों को देखकर अपना - अपना कर्म क्या है यह जानना है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि यदि हम को कोई भी रत्न लेना है तो रत्न पारखी से पूछकर ही हम वह रत्न लेते हैं ऐसे ही स्वधर्म क्या है? यह शास्त्रों से पूछना चाहिए अर्थात् शास्त्रों के अनुसार होना चाहिए। जो शास्त्र कहते हैं उनके अनुसार मेरा कौन सा वर्ण है? मेरा कौन सा आश्रम है? यह विचार कर ही स्वधर्म या अपना कर्तव्य कर्म जानना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार जो निषिद्ध है उस कार्य को करने से कितना भी लाभ हो वह नहीं करना है। जिस परमात्मा से सभी भूत मात्र बने हैं यदि उनकी पूजा करना चाहते हो और उनको प्राप्त करना चाहते हो तो स्वकर्म करो और अपने कर्म को मुझे अर्पण करो। भगवान् को ये कर्म पुष्प सबसे अधिक प्रिय हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने बड़ी सुंदर बात कही है- यह सारा विश्व जिसमें व्याप्त है और जो सम्पूर्ण विश्व के कण - कण में व्याप्त है, उस परमात्मा की पूजा अपने कर्म के द्वारा की जानी चाहिए। अपना एक-एक कर्म भगवान् को अपना फूल चढ़ा रहा हूँ यह समझ कर करना और उसको भगवान् को अर्पण करते चलना चाहिए। भगवान् सबसे अधिक संतुष्ट और प्रसन्न स्वकर्मों के फूलों की पूजा से होते हैं। कर्मों के फूलों से भगवान् की पूजा कर कोई भी मनुष्य परम सिद्धि की प्राप्ति कर सकता है।

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः(फ), परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं(ङ) कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥18.47॥**

अच्छी तरह अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुणरहित (भी) अपना धर्म श्रेष्ठ है। (कारण कि) स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ (मनुष्य) पाप को प्राप्त नहीं होता।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि स्वधर्म हमारे लिए निश्चित रूप से कल्याणकारी है, श्रेय है। अर्जुन ने भी भगवान् से उनके लिए श्रेयस्कर जो कार्य है वह बताने के लिए कहा था।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥2.7॥

अर्थात् कायरता रूपी दोष से युक्त स्वभाव वाला तथा धर्म के विषय में मोहित चित्त से मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन मेरे लिए निश्चित कल्याण कारक हो, वह मेरे लिए कहिए, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

अपने कर्म को कभी भी छोटा नहीं समझना है। अपना- अपना कर्तव्य जो भली प्रकार से करता है वह भगवान् की सेवा करता है। साफ सफाई का कार्य श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि परमात्मा को अपने पास बुलाना है तो स्वच्छता आवश्यक है। दूसरे का कार्य हमेशा अच्छा लगता है किंतु हमारा कार्य ही हमारे लिए श्रेयस्कर है अर्थात् कल्याणकारी है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि मेरी माँ वृद्ध हो गई हैं, कैसी भी हैं मेरे लिए तो उनका प्रेम ही श्रेष्ठ रहेगा। मेरी माँ के अन्तः करण में तो मेरे लिए ही प्रेम सर्वाधिक रहेगा। एक और सुन्दर उदाहरण ज्ञानेश्वर महाराज देते हैं कि घी और पानी का। घी में तो बहुत गुण है, वह पानी से महंगा भी होता है किंतु यदि मछली को कहेंगे कि पानी छोड़ कर घी में चली जाए तो वह जीवित नहीं रह सकती है। ठीक उसी प्रकार अपना-अपना कर्तव्य, अपना स्वधर्म ही अपने लिए श्रेयस्कर है। वही हमारे लिए कल्याणकारी है।

**सहजं(ङ्) कर्म कौन्तेय, सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण, धूमेनाग्निरिवावृताः॥18.48॥**

हे कुन्तीनन्दन ! दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्म धुँएँ से अग्नि की तरह (किसी न किसी) दोष से युक्त हैं।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि स्वभाव के अनुसार जो कार्य हमारे लिए विहित हो गया है, वो कर्म करने से कभी पाप नहीं लगता है। ना तो न्यायाधीश को मृत्युदंड देने पर पाप लगता है और ना ही बधिक(जल्लाद) को फांसी पर लटकाने पर। यदि योद्धा युद्ध भूमि में अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए किसी को मारता भी है तो उसे पाप नहीं लगता है क्योंकि वह उसका कर्म है। अपना - अपना कर्तव्य कर्म करने पर उसे पुण्य ही लगता है। तुकाराम महाराज ने किराने की दुकान चलाते हुए, रविदास महाराज ने जूते सिलने का कार्य करते हुए भी परमात्मा को प्राप्त कर लिया। कोई भी कार्य छोटा नहीं होता। यदि स्वधर्म में दोष भी दिखाई दे तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए। जैसे दूसरों के जूते सिलने का कार्य यदि छोटा भी लगता है तो इस भाव से किया जाए कि ईश्वर की चरण पादुकाएँ मेरे पास आ गई हैं। तो फिर कार्य छोटा नहीं लगेगा। भगवद्गीता हमारा दृष्टिकोण और सोच बदलने का कार्य करती है कि कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता। सभी को शास्त्र सम्मत स्वधर्म का पूर्ण निष्ठा से पालन करना चाहिए। सभी कर्मों में अलग-अलग प्रकार के दोष होते हैं। जिस प्रकार अग्नि के साथ धुआँ होता ही है, उसी प्रकार सभी कर्मों के साथ अलग-अलग प्रकार के दोष होते ही हैं। उन दोषों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। भगवद्गीता अनुभूति का शास्त्र है।

18.49

**असक्तबुद्धिः(स्) सर्वत्र, जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं(म्) परमां(म्), सन्न्यासेनाधिगच्छति॥18.49॥**

जिसकी बुद्धि सब जगह आसक्तिरहित है, जिसने शरीर को वश में कर रखा है, जो स्पृहारहित है (वह मनुष्य) सांख्ययोग के द्वारा सर्वश्रेष्ठ नैष्कर्म्य-सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि जो व्यक्ति किसी भी कर्म में आसक्त नहीं होता है अर्थात् सबके साथ रहते हुए भी अपने आनंद में रहता है या संसार में रहते हुए भी अलग रहता है। जिस प्रकार कमल का पत्र पानी में रहते हुए भी पानी से संलिप्त (चिपकता) नहीं है उसी प्रकार जो व्यक्ति कर्मों के प्रति आसक्त नहीं होता है, वह अपने मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है और यह समझता है कि मुझे कर्म करने का अवसर मिला यही मेरे लिए सबसे बड़ा फल है। कर्तव्य कर्म को करके मुझे ईश्वर की प्राप्ति हो जाये इसके अतिरिक्त और कोई इच्छा उसकी नहीं होती है। संन्यास अर्थात् अच्छे से किया हुआ त्याग। जिसने सारी अपेक्षाओं का त्याग कर दिया है, वह अंतरंग से संन्यासी हो जाता है। गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी हो जाता है वह व्यक्ति कुछ ना करते हुए भी सब कुछ कर लेता है और सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता है। अर्थात् मैं कर रहा हूँ या अहम् कृत भाव उसका नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार परमात्मा कुछ नहीं करते हुए भी सब कुछ करते हैं। जब आत्म तत्व के द्वारा सभी कार्य हो रहा है यह बात मनुष्य समझ लेता है तो वह नैष्कर्म्यसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

18.50

**सिद्धिं(म्) प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय, निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥18.50॥**

हे कौन्तेय ! सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को प्राप्त हुआ साधक ब्रह्म को, जो कि ज्ञान की परा निष्ठा है, जिस प्रकार से प्राप्त होता है, उस प्रकार को (तुम) मुझसे संक्षेप में ही समझो।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म करने से कर्मयोग और भक्ति योग दोनों ही हो जाते हैं। परम ज्ञान की प्राप्ति कर मनुष्य किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर लेता है ये मुझसे संक्षेप में सुनो।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो, धृत्यात्मानं(न) नियम्य च।
 शब्दादीन्विषयास्त्यक्त्वा, रागद्वेषौ व्युदस्य च॥18.51॥
 विविक्तसेवी लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः।
 ध्यानयोगपरो नित्यं(म्), वैराग्यं(म्) समुपाश्रितः॥18.52॥
 अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(म्) परिग्रहम्।
 विमुच्य निर्ममः(श्) शान्तो, ब्रह्मभूयाय कल्पते॥18.53॥

(जो) विशुद्ध (सात्त्विकी) बुद्धि से युक्त, वैराग्य के आश्रित, एकान्त का सेवन करने वाला (और) नियमित भोजन करने वाला (साधक) धैर्यपूर्वक इन्द्रियों का नियमन करके, शरीर, वाणी, मन को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके और राग-द्वेष को छोड़कर निरन्तर ध्यानयोग के परायण हो जाता है, (वह) अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह से रहित होकर (एवं) ममता रहित तथा शान्त होकर ब्रह्मप्राप्ति का पात्र हो जाता है। (18.51-18.53)

विवेचनः श्रीभगवान् कहते हैं कि परम ज्ञान की प्राप्ति के बाद मनुष्य की बुद्धि सात्त्विक हो जाती है। वह अपनी इंद्रियों को नियंत्रण में रखता है, उसका अपनी वाणी पर भी नियंत्रण है अर्थात् कम बोलता है, उसका शरीर पर भी नियंत्रण रहता है, कम खाता है। रूप, रस एवं गंध सबका वह त्याग कर देता है, वह विषयों में नहीं रमता है। राग, द्वेष के भाव नहीं आते हैं। एकांत उसको अच्छा लगने लगता है। नित्य ध्यान करने की इच्छा होती है। वैराग्य हो जाता है अर्थात् आसक्ति नष्ट हो जाती है। अहंकार का त्याग और बल का घमंड नहीं रहता है। काम, क्रोध सभी का त्याग कर देता है। कामना के कारण ही क्रोध आता है। क्रोध के समय आत्मनिरीक्षण करें तो उसका मूल कारण हमारी कामना ही मिलेगी। जब काम चला जाता है तो क्रोध भी उसके पीछे-पीछे चला जाता है उसका त्याग नहीं करना पड़ता है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जैसे फल परिपक्व हो जाता है तो वृक्ष उसको पकड़ कर नहीं रखता और ना ही फल वृक्ष को पकड़ कर रखता है वह अपने आप छूट जाता है। वैसे ही काम क्रोध का त्याग करने की आवश्यकता नहीं होती वह अपने आप छूट जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज ने कहा है कि यह सब धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है, जैसे सूर्य उदय के साथ ही दोपहर नहीं होती उसमें 6 घंटे का समय लगता है एवं बीज बोने के साथ ही पौधा नहीं बनता उसमें समय लगता है ठीक उसी प्रकार कर्मयोग को प्रारंभ करने के साथ ही परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। कर्मयोग का आचरण करते करते धीरे-धीरे हमारी बुद्धि शुद्ध हो जाती है और हमारा अंतःकरण शुद्ध हो जाता है। ऐसा व्यक्ति ध्यान योग में लग जाता है। वह शान्त चित्त हो जाता है। वह परब्रह्म के साथ एक रूप हो जाने के योग्य हो जाता है। वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। समाधि की भी कई अवस्थाएं हैं-

- 1) सालोक्य : परमात्मा दिखाई देने लगता है कि वह किस प्रकार का है?
- 2) सामीप्य : उसके बाद परमात्मा हमें अपने निकट अनुभव होता है।
- 3) सारूप्य : उसके बाद अगले चरण में मनुष्य परमात्मा के जैसा बनने का प्रयास करता है।
- 4) सायुज्य : अन्ततः परमात्मा के साथ एकरूप हो जाता है।

18.54

ब्रह्मभूतः(फ्) प्रसन्नात्मा, न शोचति न काङ्क्षति।
 समः(स्) सर्वेषु भूतेषु, मद्भक्तिं(म्) लभते पराम्॥18.54॥

(वह) ब्रह्मरूप बना हुआ प्रसन्न मन वाला साधक न तो (किसी के लिये) शोक करता है (और) न किसी की इच्छा करता है। (ऐसा) सम्पूर्ण प्राणियों में समभाव वाला साधक मेरी पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचनः इतना होने पर भी वह परमात्मा को प्राप्त करने के लिए एक स्थिति से और पार होता है। ऐसा परमात्मा में लीन व्यक्ति प्रसन्न रहता है। वह न सोचता है और कोई आकांक्षा भी नहीं रखता है। उसको सारे भूतों के प्रति सम दृष्टि प्राप्त हो जाती है। उसको सभी में एक ही परमात्म तत्त्व दिखाई देता है। अनन्य भक्ति उस व्यक्ति को प्राप्त होती है। तब वह परब्रह्म को जान

जाता है।

18.55

**भक्त्या मामभिजानाति, यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां (न) तत्त्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम्॥18.55॥**

(उस) पराभक्ति से मुझे, (मैं) जितना हूँ और जो हूँ (इसको) तत्त्व से जान लेता है फिर मुझे तत्त्व से जानकर तत्काल मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

विवेचन: आगे श्रीभगवान् कहते हैं कि इस प्रकार की भक्ति से मनुष्य परमात्मा को तत्त्वतः जान लेता है। उसके पश्चात वह मुझमें आकर बसता है। वह जान जाता है कि मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं इंद्रियाँ नहीं हूँ। मैं परम तत्त्व हूँ। यह उसको ज्ञान हो जाता है। आदि शंकराचार्य जी का काव्य है-

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहम्

न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे ।

न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुः

चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥1॥

अर्थात्

मैं मन, बुद्धि, अहंकार और स्मृति नहीं हूँ, न मैं कान, जिह्वा, नाक और आँख हूँ। न मैं आकाश, भूमि, तेज और वायु ही हूँ, मैं चैतन्य रूप हूँ, आनंद हूँ, शिव हूँ, शिव हूँ।

सातवें अध्याय में भगवान ने चार प्रकार के भक्त बताए थे।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥7.16॥

अर्थात् ज्ञानी भक्त को मैं प्रिय हूँ और मुझे वह प्रिय है। वह जो कुछ भी करता है वह मेरा वचन ही होता है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जिस प्रकार अलंकार में स्वर्ण होता है या स्वर्ण में अलंकार ठीक उसी प्रकार वह मुझमें है या मैं भक्त में ज्ञात नहीं होता है वह एक रूप हो जाता है।

18.56

**सर्वकर्मण्यपि सदा, कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति, शाश्वतं (म्) पदमव्ययम्॥18.56॥**

मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: अपना कर्म करते हुए उन्हें भगवान को अर्पण करते रहने से ही परमात्मा प्राप्त हो जाते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नहीं॥।

भगवद्गीता का यह केंद्रीय सूत्र है कि सब कुछ जो करता है वह भक्ति हो जाती है। उसका अंतः करण प्रसन्न हो जाता है। शाश्वत,

सनातन, अव्यय, अविनाशी वह स्वयं बन जाता है।

18.57

**चेतसा सर्वकर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य, मच्चित्तः(स्) सततं(म्) भव॥18.57॥**

चित्त से सम्पूर्ण कर्म मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर (तथा) समता का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें चित्त वाला हो जा।

विवेचन: मन से सारे कर्म भगवान को अर्पण करता रहता है। सर्वत्र परमात्मा को देखता है और प्रत्येक कर्म सब के कल्याण के लिए करता है। नाली का पानी भी यदि गंगा जी में मिलता है तो वह गंगाजल हो जाता है। कौए की विष्ठा से भी पीपल का वृक्ष हो जाता है और वह पूजनीय हो जाता है। वह निंदनीय नहीं रहता। वह रत्नाकर दस्यु नहीं रहता। वह वाल्मीकि बन जाता है। भगवद् अर्पण होने से सब कुछ सत् हो जाता है। अपने कर्मों को अर्पण करते समय उसको भाव के साथ अर्पण करना है। भगवान को भाव सबसे अधिक प्रिय है।

18.58

**मच्चित्तः(स्) सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्, न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥18.58॥**

मुझमें चित्तवाला होकर (तू) मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायगा और यदि तू अहंकार के कारण (मेरी बात) नहीं सुनेगा (तो) तेरा पतन हो जायगा।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि जब मुझ में चित्त लगा कर रखोगे तो सारी कठिनाइयों से तर जाओगे। लेकिन यदि तुम अहंकार रखते हुए जो मेरी बात नहीं सुनोगे तो तुम्हारा विनाश भी होगा। चलना तो तुम्हें स्वयं को ही पड़ेगा। प्रारंभ में कठिन लगने वाले कार्य भी सरल हो जाएंगे।

18.59

**यदहङ्कारमाश्रित्य, न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते, प्रकृतिस्त्वां (न्) नियोक्ष्यति॥18.59॥**

अहंकार का आश्रय लेकर (तू) जो ऐसा मान रहा (है) कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या (झूठा) है; (क्योंकि) (तेरी) क्षात्र-प्रकृति तुझे युद्ध में लगा देगी।

विवेचन: श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि अहंकार से यदि तुम कहोगे कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। तुमको यह करना ही पड़ेगा। यह तुम्हारा निश्चय कि तुम युद्ध नहीं करोगे, यह मिथ्या है क्योंकि तुम्हारी प्रकृति तुमसे युद्ध करवा कर ही रहेगी।

विचार मंथन(प्रश्नोत्तर)

प्रश्नकर्ता : अर्चना दीदी

प्रश्न : मोक्षसंन्यासयोग नाम क्यों रखा है? धृतराष्ट्र को इच्छा नहीं हुई कि वह युद्ध रुकवा दे।

उत्तर : हर कोई मुक्ति चाहता है कोई बंधन नहीं चाहता है। अपने कर्मों को अर्पण करते चलकर निष्काम भाव से संसार में रहते हुए कोई कामना नहीं करते हुए कर्म करने से संन्यास की अवस्था प्राप्त होती है। अंततोगत्वा मोक्ष की प्राप्ति होती है। धृतराष्ट्र पर किसी भी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपने पुत्र मोह में ही आसक्त रहा।

प्रश्नकर्ता : देवराम चौहान भैया

प्रश्न : जन्म लेते ही कर्म नियत हो जाते हैं यह कैसे पहचाने?

उत्तर : कुछ नित्य कर्म होते हैं जो प्रतिदिन करने होते हैं और सद्गुरु की शरण में जाकर भी पता कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता: संपत कुमार भैया

प्रश्न : भक्तों पर संकट क्यों आते हैं?

उत्तर : कर्म निष्काम भाव से करना है। सुख दुःख पूर्वकृत कर्म के परिपक्व होने पर प्रारब्ध के रूप में सभी को भुगतना ही पड़ेगा। किंतु भगवद् भक्ति में उसको दुःख का अनुभव कम होता है।

प्रश्नकर्ता : महेश भैया

प्रश्न : क्या दुर्गा सप्तशती के लिए भी यही नियम हैं?

उत्तर : हाँ। लेकिन संथा लेकर करें तो अच्छा रहेगा।

प्रश्नकर्ता : मालिनी दीदी

प्रश्न : क्या किसी पुरुष की मृत्यु के पश्चात वह अगले जन्म में महिला के शरीर में जा सकते हैं?

उत्तर : आत्मा कहीं भी जा सकती है। यह कर्मों से निर्धारित होता है।

इस प्रकार ज्ञानवर्धक विचार मंथन के साथ विवेचन का समापन हुआ।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचें। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ाये, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥